अमर उजाला

प्रवाह

महोत्सव विश्वास का

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक
स्थापना वर्ष : 1948

नई दिल्ली ■ शुक्रवार, 16 सितंबर 2022

जीने का सबसे बड़ा गौरव कभी न गिरने में नहीं, बल्कि हर बार गिरकर उठने में है। - नेल्सन मंडेला

अनुसूचित जाति की दो नाबालिग बहनों के साथ कथित रूप से दुष्कर्म के बाद उनकी हत्या कर दिए जाने की स्तब्ध कर देने वाली घटना कानून-व्यवस्था की खामियों के साथ ही देश के सबसे बड़े सूबे के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी व्याप्त सामाजिक जटिलताओं को भी उजागर करती है।

लखीमपुर की बेटियां

उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी जिले के निघासन क्षेत्र में अनुसूचित जाति की दो नाबालिग बहनों के साथ कथित रूप से दुष्कर्म के बाद उनकी हत्या कर दिए जाने की स्तब्ध कर देने वाली घटना कानून-व्यवस्था की खामियों के साथ ही देश के सबसे बड़े सूबे के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी व्याप्त सामाजिक जटिलताओं को भी उजागर करती है। यह घटना ऐसे समय हुई है, जब हाल ही में देश ने आजादी का अमृत महोत्सव मनाया है और खुद प्रधानमंत्री ने महिलाओं के सशक्तीकरण की बात की है। निस्संदेह पुलिस ने तत्परता से सभी छह आरोपियों को गिरफ्तार कर लिया है, लेकिन यह घटना बताती है कि महिलाओं के खिलाफ अपराध के मामलों में मौत की सजा जैसे प्रावधान के बावजूद अपराधियों में किसी तरह का खौफ नहीं है। यह अकारण नहीं है कि लखीमपुर की इस घटना के सामने आने के साथ ही हमारी सामूहिक चेतना को झकझोर कर रख देने वाली बदायूं, उन्नाव और हाथरस में अनुसूचित जाति वर्ग की लड़कियों या महिलाओं के साथ हुई ऐसी ही बर्बर घटनाओं से जुड़े जख्म उभर आए हैं। आखिर अतीत की इस तरह की घटनाओं में अपराधियों को मिली सजा नजीर क्यों नहीं बन पाई? यह अच्छी बात है कि प्रदेश के उपमुख्यमंत्री ब्रजेश पाठक ने कहा है कि इस मामले में त्वरित अदालत में सुनवाई होगी, जिससे उम्मीद की जा सकती है कि इस मामले को जल्द ही उसकी निर्णायक परिणति तक पहुंचाया जा सकेगा। मगर इसके साथ ही ऐसी घटनाओं से जुड़े सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक सवालों पर भी गौर करना जरूरी है। ये दोनों बहनें अभी स्कूल में पढ़ रही थीं और जाहिर है, उनकी हमउम्र लड़कियों की तरह उनके भी सपने रहे होंगे, जिन्हें दरिंदों ने बर्बरता से कुचल दिया। उनके परिजनों ने दावा किया है कि मोटरसाइकिल पर आए अपराधी उन्हें जबर्दस्ती उठाकर गन्ने के खेतों में ले गए। गांव में उनका किसी ने विरोध क्यों नहीं किया? यह घटना बताती है कि लड़कियों और महिलाओं के साथ होने वाले ऐसे अपराधों के लिए कानून-व्यवस्था तो जिम्मेदार है ही, लेकिन समाज भी कम जिम्मेदार नहीं है। ऐसी घटनाएं सामाजिक संरचना के भीतर की दरारों को भी उजागर करती हैं, जिन पर ध्यान देने की जरूरत है, और यह देखने की भी, कि इसे राजनीतिक लाभ के हथकंडे में न बदला जाए।

इतना जटिल क्यों है भारत का भूमि बाजार

छोटे-छोटे टुकड़ों के अलावा अस्पष्ट मालिकाना हक और अदालतों की सुस्ती ने भारत में जमीन की खरीद को जोखिम भरा बना दिया है। यहां जरूरी भूमि अधिग्रहण के लिए सौ से ज्यादा भूस्वामियों से बात करनी पड़ती है।

अराध्या सूद

बुरी तरह से संचालित भारतीय भूमि बाजारों की आर्थिक लागत क्या है? जमीन से संबंधित खबरें और सार्वजनिक नीतियां अक्सर सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण के इर्द-गिर्द घूमती हैं, जैसे टाटा नैनो सिंगुर मामला या भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन (एलएआरआर) अधिनियम, 2013।

भूमि बाजारों में गड़बड़ी या इससे जुड़े विवाद के कई कारण हैं। कई दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों की तरह भारत की जटिल विरासत प्रणाली के चलते भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हो गए हैं, और समय के साथ भूमि का विखंडन बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2015 में देश में कृषि योग्य भूमि की औसत जोत का आकार 1.1 हेक्टेयर (2.7 एकड़) था, जो 1971 के 2.3 हेक्टेयर (5.7 एकड़) से कम था। छोटे-छोटे टुकड़ों के अलावा अस्पष्ट मालिकाना हक और सुस्त अदालतें देश में जमीन की खरीद को जोखिम भरा बना देती हैं। इसके अलावा, कृषि उपयोग वाली जमीन खरीदने में नौकरशाही और कानूनी बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

भूमि विवाद भारतीय अर्थव्यवस्था के कई पहलुओं को प्रभावित करता है। जैसे, बदतर तरीके से चालित भूमि बाजार भारतीय शहरों के आकार और विकास, आंतरिक प्रवास, बुनियादी ढांचे के विकास, पसंदीदा फसल, किसानों की आय, विनिर्माण उत्पादकता और विकास तथा अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक बदलाव को प्रभावित करते हैं।

भारत में 68 फीसदी कृषि जोत को सीमांत खेत माना जाता है, जो एक हेक्टेयर से कम होता है। इसके विपरीत पाकिस्तान और अमेरिका में क्रमशः 36 फीसदी और शून्य फीसदी सीमांत खेत हैं। नीतियों एवं विनियंत्रण के कारण छोटे भूखंड चकबंदी को कठिन बनाते हैं और कृषि उत्पादकता को नुकसान पहुंचाते हैं। शोध से पता चला है कि स्वतंत्रता के बाद सख्त बंटाई कानूनों के चलते बंटाईदारी घट गई, जिससे कृषि उत्पादकता में औसतन 38 प्रतिशत की कमी आई है। इसका एक और नतीजा यह है कि सीमांत खेतों में पर्याप्त मशीनों का उपयोग नहीं हो सकता, न ही नकदी फसलों की खेती हो सकती है। यानी ऐसे खेतों से ज्यादा लाभ नहीं उठाया जा सकता।

भारत में दो फीसदी विनिर्माण कंपनियों के पास दस या उससे ज्यादा कर्मचारी हैं, जबकि मैक्सिको और अमेरिका में ऐसी कंपनियों की संख्या क्रमशः आठ और चालीस फीसदी है। यह बड़ी समस्या है, क्योंकि बड़ी कंपनियां कम शिक्षित श्रमिकों के लिए ज्यादा रोजगार पैदा करती हैं। बड़ी भारतीय कंपनियां (दस या ज्यादा कर्मचारियों वाले) 35 फीसदी विनिर्माण श्रमिकों को रोजगार देती हैं, जबकि मैक्सिको में ऐसी कंपनियां 78 फीसदी विनिर्माण श्रमिकों को रोजगार देती हैं।

भारत में विनिर्माण कंपनियों के विकास न करने का एक कारण भूमि विवाद भी है। यदि कोई कंपनी अपना विस्तार करना या एक नई फैक्टरी लगाना चाहती है, तो उसे जरूरी भूमि अधिग्रहण के लिए सौ से ज्यादा भूस्वामियों से बात करनी पड़ती है। ऐसा परिवहन उपकरण और रसायन निर्माण जैसे उद्योगों के मामले में खासकर होता है। अमेरिका और भारत में ऑटोमोबाइल संयंत्र के लिए भूमि अधिग्रहण के उदाहरण से इसे बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। इंडियाना में अपने फोर्ट वायने ऑटो संयंत्र के लिए कंपनी के महानिदेशक ने 29 भूस्वामियों से 379 हेक्टेयर भूमि दो महीने में खरीद ली। जबकि टाटा नैनो संयंत्र मामले में पश्चिम बंगाल सरकार ने 12,000 भूस्वामियों से 13,970 से अधिक भूखंडों को मिलाकर 404 हेक्टेयर भूमि एकत्र की थी।

मैंने अपने शोध में पाया कि भूमि विवाद के चलते विनिर्माण कंपनियां टुकड़ों में भूमि अधिगृहीत करती हैं, और कई बार जमीन हासिल करने के लिए वर्षों इंतजार करती हैं। सरकारी कंपनियों की तुलना में निजी कंपनियां छोटे-छोटे टुकड़ों में जमीन खरीदती हैं। इसके अलावा कंपनियों को जमीन की कीमत से ज्यादा खर्च पर्याप्त भूखंड एकत्र करने में करना पड़ता है। भूमि एकत्रीकरण की लागत दो रूपों में आती है-निश्चित लागत और परिवर्तनीय लागत। अपने यहां भूमि एकत्रीकरण के मामले में परिवर्तनीय लागत निश्चित लागत से ज्यादा मायने रखती है। प्रति हेक्टेयर परिवर्तनीय भूमि एकत्रीकरण लागत भूमि के आकार के साथ बढ़ती है। इसलिए बड़ी कंपनियों के लिए लागत बहुत ज्यादा होती है। ऐसा भूखंडों के छोटे आकार एवं अस्पष्ट मालिकाना हक के कारण होता है। निजी कंपनियों को सरकारी कंपनियों की तुलना में तीन गुना ज्यादा भुगतान करना पड़ता है। कई राज्यों में कंपनियां भूमि के लिए बिक्रय मूल्य से दो गुना ज्यादा भूमि एकत्रीकरण के लिए भुगतान करती हैं।

हमें समझना चाहिए कि सीमांत कृषि भूमि पर खेती आर्थिक सुरक्षा प्रदान करती है और लाखों परिवारों के लिए आय का एकमात्र स्रोत है, भले ही उसका उत्पादक रूप से उपयोग न किया गया हो। भले ही हम केवल सीमांत किसानों के लाभ को अधिकतम करने की परवाह करते हों, पर ऐसा कोई कारण नहीं है कि कृषि क्षेत्र में भूमि समेकन नीतियां आज भारत में अवैध हैं। भूमि एकत्रीकरण टकराव को देखते हुए भारत में बाजार समाधान कामयाब नहीं होने वाला है, जिसमें बिचौलिए सौदेबाजी करते हैं और जब तक अधिकतम लाभ नहीं मिलता, जमीन को खरीदते- बेचते रहते हैं। ऐसे में हमारे पास दो संभावनाएं बचती हैं।

पहली संभावना लैंड पूलिंग नीतियां हैं, जो कई राज्य सरकारें वर्तमान में विभिन्न पैमानों पर कर रही हैं। लैंड पूलिंग निश्चय ही विनिर्माण कंपनियों की कुल लागत कम करेगी और उनकी विकास दर में वृद्धि करेगी। दूसरी संभावना सरकारी एवं निजी कंपनियों के लिए भूमि एकत्रीकरण लागत कम करने की है। इसके लिए सरकार ने जमीन के पुराने दस्तावेजों को डिजिटाइज करने का काम पहले ही शुरू कर दिया है। 30.2 करोड़ पंजीकरण रिकॉर्ड (आरओआर) में से 94 फीसदी पहले ही डिजिटाइज हो चुके हैं। इसके अलावा, 13.5 प्रतिशत गांव के नक्शों का पुनः सर्वेक्षण किया गया है, हालांकि ये नक्शे आरओआर या विभिन्न राज्यों की अदालती व्यवस्था से जुड़े हैं या नहीं, यह पता नहीं है। एक बार डिजिटलीकरण और पुनर्सर्वेक्षण की इन मूलभूत बाधाओं को दूर करने के बाद भी भूमि का विखंडन कुछ हद तक भूमि एकत्रीकरण के लिए महत्वपूर्ण चुनौती बना रहेगा।

-लेखिका टोरंटो विश्वविद्यालय में प्रबंधन विभाग में सहायक प्रोफेसर हैं।

ब्रजेश्वर प्रसाद
(1911-1979)

आजादी के अमृत कथन

मैं समूचे भारत को अपना घर समझता हूं। इस नाते मैं किसी भी ऐसे प्रस्ताव का समर्थन नहीं करूंगा, जो एक प्रांत के तो अनुकूल हो और अन्य किसी प्रांत के हितों के प्रतिकूल हो।

मैं समूचे भारत को अपना घर समझता हूं

श्रीमान, मैं अनुच्छेद 255 पर चंद बातें कहने के लिए खड़ा हुआ हूं। इस अनुच्छेद में यह जो प्रावधान रखा गया है कि टोटे (कम) वाले प्रांतों को सहायक अनुदान में कितनी रकम दी जाए, इसका निश्चय संसद करेगी, मैं इसके खिलाफ हूं। अनुच्छेद 254 में सहायक अनुदान की रकम को विहित करने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है न कि संसद को, क्योंकि अगर संसद को इसका अधिकार रहता है, तो सदस्यगण यहां अपने दावों को लेकर सभा-भवन में कलह मचाएंगे, जिसे यहां बहुत अनुचित तथा संविधान की भावना के प्रतिकूल समझा गया। यही सोच-समझकर वहां राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया और संसद को नहीं। अगर सदस्यों के कलह की बात अनुच्छेद 254 के संबंध में अनुचित समझी गई, तो फिर अनुच्छेद 255 के संबंध में भी वह बात अच्छी नहीं कही जा सकती है। इसलिए मैं इस पक्ष में हूं कि जो तरीका 254 में रखा गया है, वही यहां रहना चाहिए।

मैं अपने को शुद्ध राष्ट्रीयतावादी मानता हूं और समूचे भारत को अपना घर समझता हूं। इस नाते मैं यहां किसी भी ऐसे प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर सकता हूं, जो एक प्रांत के तो अनुकूल हो और अन्य किसी प्रांत के हितों के प्रतिकूल हो। मैं यह महसूस करता हूं, कि जब तक भारत सरकार की बागडोर आप जैसे महानुभाव के हाथ में है और राजा जी, सरदार पटेल, पंडित नेहरू और मौलाना आजाद सरीखे दिव्य-चेता व्यक्ति वहां मौजूद हैं, प्रांतों के यानी देश की समस्त जनता के हित सर्वथा सुरक्षित ही रहेंगे। इसलिए अनुच्छेद 255 में जो यह प्रावधान किया गया है कि प्रांत की आवश्यकता के अनुसार सहायक अनुदान दिया जाएगा, उससे मैं सहमत हूं। पर सहायक अनुदान की रकम निश्चित करने का अधिकार राष्ट्रपति को होना चाहिए, न कि संसद को।

मानवता की आज यह मांग है कि इन जनजाति क्षेत्रों को हमें प्रांतों से अलग करके इनके लिए एक स्वतंत्र तथा क्षमता प्राप्त प्राधिकारी रहना चाहिए, जो इनके उत्थान के लिए ध्यान देने में सदा तत्पर रहे।

जनजाति-क्षेत्रों को प्रांतों से अलग करने के पक्ष में जो मैं हूं, इसका पहला कारण यह है कि प्रांतों की आर्थिक अवस्था बिल्कुल शोचनीय है। कोई भी रकम जनजातियों की समुन्नति के लिए ये प्रांत नहीं खर्च कर सकते हैं। प्रांतीय राजनीति की बिसात पर इन गरीब जनजातियों को मुहरों की तरह चलाया जा रहा है। मानवता की आज यह मांग है-मैं इस समस्या पर शुद्धतः मानवीय दृष्टिकोण से विचार कर रहा हूं, कि इन जनजाति क्षेत्रों को हमें प्रांतों से अलग करके इनके लिए केंद्र में एक स्वतंत्र तथा क्षमता प्राप्त प्राधिकारी रहना चाहिए, जो इन जनजातियों के उत्थान के लिए समुचित ध्यान देने में सदा तत्पर रहेगा। मैं यह नहीं चाहता कि खुद केंद्रीय शासन भी जनजाति क्षेत्रों के कार्यों के संबंध में हस्तक्षेप करे। यहां की समस्याएं बड़ी नाजुक हैं और इसके लिए हमें जरूरत है विशेषज्ञों, चिकित्सकों तथा वैज्ञानिकों के सत्परामर्श और मदद की। देश के स्वतंत्र होने पर अब भारत शासन में इन्हें स्थान मिलना ही चाहिए। मेरे मन में इसका पक्का विश्वास हो गया है, कि मानवता के इस विशाल शोषित समुदाय की दशा को समुन्नत बनाने के लिए अगर कोई समुचित कार्रवाई नहीं की जाती है, तो देश में एक भयंकर उथल-पुथल मच जाएगी। अशांति यहां पहले से ही वर्तमान है। राजनीति में भविष्यवक्ता बनना बड़ा खतरे का काम है, पर मुझे इस बात का निश्चय है कि आगामी चुनाव में इस समस्या का वास्तविक रूप हमारे सामने आ जाएगा। मैंने जो योजना सभा के समक्ष रखी है, श्रीमान, वह आत्मनिर्णय के सिद्धांत के सर्वथा अनुरूप है।

-संविधान सभा में दिए गए भाषण के संपादित अंश।

दूसरा पहलू

पर्यावरणीय भौतिकीविद का कहना है कि नील नदी की खुफू धारा के बगैर पिरामिडों का निर्माण असंभव था।

नील नदी की धारा ने खड़े किए मिस्र के पिरामिड

पिछले 4,500 साल से नील नदी के पश्चिमी तट पर गिजा के पिरामिड ज्यामितीय पर्वत श्रृंखला के रूप में खड़े हैं। मिस्र के चौथे राजवंश के दूसरे राजा फराओ खुफू की स्मृति में ईसा पूर्व 2560 में निर्मित ये पिरामिड 13 एकड़ में फैले हैं, जबकि इनकी ऊंचाई 480 फीट है। यह कल्पना करना भी आश्चर्यजनक है कि पिरामिड तैयार करने के लिए चूना पत्थर और ग्रेनाइट के 23 लाख स्लैब्स, जिनमें से हर एक का वजन दो टन से अधिक था, मीलों दूर रेगिस्तान से नील नदी के तट तक लाए गए थे।

जैक टैमीशिया

पिरामिड तैयार करने के लिए चूना पत्थर और ग्रेनाइट के 23 लाख स्लैब्स मीलों दूर रेगिस्तान से नील नदी के तट तक लाए गए थे।

जमीनी रास्ते से इन स्लैब्स को ढोकर लाना निश्चित तौर पर एक कठिन काम था। वैज्ञानिक लंबे समय से यह मानते आए हैं कि नदियों या नदी की धारा से नावों पर ढुलाई ज्यादा आसान है। आज नील नदी पिरामिड से मीलों दूर है। लेकिन शोधकर्ताओं की टीम ने हाल ही में इसके सबूत दिए हैं कि नील की एक धारा, जो अब सूख चुकी है, कभी पिरामिड के पास के रेगिस्तान से होकर बहती थी। जाहिर है, वैसे में, चूना पत्थर और ग्रेनाइट के विशाल टुकड़ों को पिरामिड के स्थल तक लाना बहुत आसान रहा होगा।

आज नील नदी पिरामिड से मीलों दूर है। पर शोधकर्ताओं की टीम ने हाल ही में सबूत दिए हैं कि नील की एक धारा, जो अब सूख चुकी है, कभी पिरामिड के पास के रेगिस्तान से होकर बहती थी।

रेगिस्तान की मिट्टी में संरक्षित तथ्यों के अध्ययन के आधार पर वैज्ञानिकों ने खुफू धारा के, जो नील की ही एक सहायक नदी थी, उत्थान-पतन के बारे में बताया है। द *नेशनल एकेडेमी ऑफ साइंस* में प्रकाशित लेख के मुताबिक, 600 ईसा पूर्व में सूख चुकी खुफू धारा ने पिरामिडों के निर्माण में बहुत मदद की। पर्यावरणीय भौतिकीविद हैदर शेसा के अनुसार, 'नील की उस धारा के बगैर पिरामिडों का निर्माण असंभव था।' येल यूनिवर्सिटी के जोसेफ मैनिंग कहते हैं, 'हम जानते हैं कि एक समय गिजा के पिरामिड के नजदीक तक पानी था, जिससे बड़ी-बड़ी चट्टानों को वहां तक ले जाना संभव हुआ।'

पिरामिड के आसपास की जमीन की 30 फीट तक गहरी खुदाई के बाद शोधार्थियों को वहां एक समय पानी के होने का वैज्ञानिक सबूत मिला। अध्ययनों से पता चलता है कि 8,000 साल पूर्व जब सहारा रेगिस्तान का बड़ा हिस्सा झीलों और घास के मैदानों से भरा था, तब गिजा के आसपास का क्षेत्र पानी के नीचे था। उसके कुछ हजार साल बाद जब उत्तरी अफ्रीका सूख गया, तब भी खुफू धारा ने अपने अंदर 40 फीसदी पानी बचा रखा था। 1350 ईस्वी पूर्व जब तूतनखामन ने सत्ता संभाली, तब खुफू धारा भीषण सूखे का सामना कर रही थी। हैदर शेसा कहती हैं, 'वैज्ञानिक अध्ययन पिरामिडों से जुड़े कई रहस्यों से पर्दा उठाता है।'

© The New York Times 2022

आंकड़े

ई-सामान का उत्पादन

वर्ष 2014-15 में मात्र 1.90 लाख करोड़ रु. के घरेलू इलेक्ट्रॉनिक सामान का उत्पादन होता था, जो बढ़कर 5 लाख करोड़ रु. से ज्यादा का हो गया।

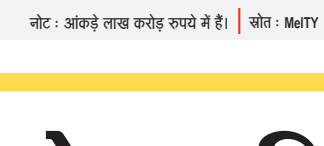

नोट : आंकड़े लाख करोड़ रुपये में हैं। | स्रोत : MeITY

तुलसीदास को देखते ही संत नाभादास उनके चरणों में पड़ गए। नाभा जी तथा अन्य संतगण गोस्वामी जी की विनयशीलता देखकर हतप्रभ थे।

अनूठी विनयशीलता

अंतर्यात्रा
शिवकुमार गोयल

एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी भगवान श्रीकृष्ण की लीला भूमि के दर्शन के लिए वृंदावन पहुंचे। वह श्रीराम गुलेला नामक स्थान पर रुके। *श्री भक्तमाल* के रचयिता संत श्री नाभा जी उन दिनों वृंदावन आए हुए थे। उन्होंने संतों को प्रसाद (भोजन) ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया। उन्हें यह पता नहीं था कि तुलसीदास भी वृंदावन आए हुए हैं। तुलसीदास ने नाभा जी की ख्याति सुन रखी थी। उन्हें जैसे भगवान से प्रेरणा मिली कि नाभादास जी द्वारा आयोजित भंडारे में जाकर वैष्णव संतों के दर्शन करें। वह चुपचाप वहां जा पहुंचे। उन्होंने देखा कि प्रसाद के लिए संत पंक्ति में बैठ चुके हैं। कहीं जगह नहीं बची है। तुलसीदास उस स्थान पर बैठ गए, जहां संतों की जूतियां रखी हुई थीं। किसी ने उनके सामने भी पत्तल रख दिया। प्रसाद परोसने वाले ने सब्जियां व पूरियां पत्तल में परोस दीं। बाल्टी में खीर लेकर आए संत-सेवक ने पूछा, 'बाबा, खीर किस पात्र में परोसूं?' तुलसीदास जी ने एक संत की जूती की ओर संकेत कर कह दिया, 'इसमें परोस दो।' यह सुनते ही खीर परोसने वाला नाराज होकर शोर मचाने लगा। शोर सुनकर संत नाभादास वहां पहुंचे। तुलसीदास को देखते ही वह उनके चरणों में पड़ गए। संत नाभा जी तथा अन्य संतगण गोस्वामी जी की विनयशीलता देखकर हतप्रभ थे।

(अमर उजाला आर्काइव से)

पुराने पन्नों से

बचत योजना व आयकर ढांचा बदलने की मांग

अमर उजाला
THE DAILY AMAR UJALA

अनिवार्य बचत योजना वापिस लेने और आयकर का ढांचा बदलने की मांग

हिन्द मजदूर सभा के प्रस्ताव

राहुल सांकृत्यायन का देहान्त

अखिल भारतीय हिंद मजदूर सभा के ग्यारहवें वार्षिक कन्वेंशन ने एक प्रस्ताव पारित करके मांग की है कि अनिवार्य बचत योजना को वापस लिया जाए और आय कर के ढांचे में इस प्रकार संशोधन किया जाए, जिससे कि कम आय वाले वर्गों को राहत मिले।

अमर उजाला, 15 अप्रैल, 1963

फेडरल रिजर्व के रुख से बदलती दुनिया

मधुरेन्द्र सिन्हा

अर्थव्यवस्था

अगर फेड ने 0.75 फीसदी ब्याज बढ़ाया, तो इससे डॉलर महंगा होगा, व्यापार घाटा बढ़ेगा और विदेशी निवेशक तेजी से भारत से पैसे निकालने लग जाएंगे।

अमेरिका का केंद्रीय बैंक, जिसे फेडरल बैंक कहते हैं, दुनिया की आर्थिक गतिविधियों का सबसे बड़ा केंद्र है और इसका कोई भी बड़ा फैसला काफी असर डाल देता है। इस समय सारी दुनिया की नजरें इस महीने की 21 तारीख को होने वाली उसकी बैठक पर गड़ी हुई हैं। दरअसल फेडरल बैंक ने पिछले दिनों अपनी ब्याज दरों में काफी बढ़ोतरी की है, क्योंकि अमेरिका ऐतिहासिक महंगाई से जूझ रहा है। मुद्रास्फीति की दर आसमान छू रही है, जून में यह 9.2 फीसदी हो गई थी और यह इस समय घटकर आठ फीसदी पर आई है, जबकि फेड चाहता है कि यह दो फीसदी के आसपास रहे।

फेड के कामकाज पर नजर रखने वाले कहते हैं कि इस बार फिर फेड ब्याज दरों में 0.75 फीसदी बढ़ोतरी कर सकता है। इसके पहले भी उसने 0.75 फीसदी की बड़ी बढ़ोतरी की है। फेड ब्याज दरें बढ़ाकर अर्थव्यवस्था से अतिरिक्त धन निकालना चाहता है। जब ब्याज दरें बढ़ जाती हैं, तो लोग पैसा बाजार में खर्च करने के बजाय बांडों में लगाना पसंद करते हैं। यह माना जाता है कि बढ़ी हुई ब्याज दरें बाजार से अतिरिक्त धन को बाहर निकल देती हैं, जिससे महंगाई पर असर पड़ता है। डॉलर भी महंगा हो जाता है और रुपये की कीमत गिरने लगती है, जिसका असर व्यापार संतुलन पर पड़ता है, जो निगेटिव हो जाता है। यानी व्यापार घाटा बढ़ने लगता है। डॉलर महंगा होने से सबसे बड़ा असर कच्चे तेल की कीमतों पर पड़ता है, जिनमें तेजी आती है। इसके असर से देश में महंगाई बढ़ जाती है। आज सारी दुनिया महंगाई के लपेटे में है, जिसका मुख्य कारण कच्चे तेल की बढ़ी हुई कीमत है। रूस-यूक्रेन युद्ध के कारण कच्चे तेल और गैस की आपूर्ति पर भारी असर हुआ। इससे एक समय तो कच्चे तेल की कीमतें अंतरराष्ट्रीय बाजारों में 150 डॉलर प्रति बैरल हो गई थीं। अभी हालात में काफी सुधार है और यह 90 डॉलर के आसपास है। लेकिन सर्दियां आ रही हैं और इसके दाम फिर बढ़ सकते हैं, क्योंकि अमेरिका, यूरोप तथा अन्य ठंडे देशों में ऊर्जा के लिए कच्चे तेल की मांग काफी बढ़ जाती है। इस समय दुनिया ऊर्जा के संकट से जूझ रही है, जिसका ओपेक देश जमकर फायदा उठा रहे हैं।

भारत इस समय महंगाई की चपेट में है। ताजा आंकड़े बता रहे हैं कि अगस्त महीने में महंगाई की दर 6.71 फीसदी से बढ़कर 7 फीसदी हो गई, जो जनता को रुलाने के लिए काफी है। खाने-पीने की चीजों की कीमतें 7.62 फीसदी बढ़ गई हैं। अब भारत में भी रिजर्व बैंक इसे नीचे लाने के लिए कदम उठाएगा, क्योंकि उसे महंगाई को छह फीसदी से नीचे रखना है। उसके पास ब्याज ही एक बड़ा हथियार है, जिससे वह इस दिशा में प्रयास करता है। दुनिया भर के केंद्रीय बैंक यह उपाय करते हैं। लेकिन जब अमेरिका में ब्याज दरें बढ़ाई जाती हैं, तो उससे दुनिया भी हिल जाती है। कीमतों पर लगाम लगने की संभावना बढ़ जाती है, क्योंकि उसकी अर्थव्यवस्था व्यवस्थित है और उसमें नकदी का प्रवाह बहुत ही कम है और दूसरी बात यह भी है कि वहां हमारी तरह काला धन अर्थव्यवस्था में रचा-बसा नहीं है। इस कारण से वहां तो सफलता मिलती है, लेकिन भारत में नहीं के बराबर। इसका सबसे बड़ा उदाहरण पूर्व गवर्नर सुब्बा राव के ज़माने में देखने को मिला। उन्होंने महंगाई को थामने के लिए 12 बार रेपो रेट बढ़ाया और ब्याज दरों को 8.25 फीसदी पर पहुंचा दिया। फिलहाल तो भारत में ऐसी संभावना नहीं दिखती है, लेकिन अगर महंगाई पर लगाम नहीं लगी, तो इस परंपरागत अस्त्र का इस्तेमाल करने में शक्तिकांत दास नहीं चूकेंगे।

भारत की समस्या है कि यह निर्यातोन्मुखी अर्थव्यवस्था नहीं है। हमारी अर्थव्यवस्था खपत पर आधारित है और हमारा व्यापार घाटा काफी बड़ा है। ऐसे में जब डॉलर महंगा हो जाता है, तो यह फासला और बढ़ जाता है। अगर फेड ने 0.75 फीसदी ब्याज बढ़ाया तो इसका असर इस पर पड़ेगा और विदेशी निवेशक भारत से पैसे निकालने लग जाएंगे। रिजर्व बैंक क्या रेपो रेट में बढ़ोतरी के परंपरागत हथियार से इसका मुकाबला कर पाएगा? सुब्बा राव तो दर्जन बार बढ़ाकर भी नहीं कर पाए थे।

edit@amarujala.com